सिद्धपुर एक परिचय

सिद्धपुर माहात्म्य

संकलन – संशोधन –लेखन

स्व. वैद्यशास्त्री पण्डित प्रेमशंकर वल्लभराम शर्मा - साहित्यायुर्वेदाचार्य

मूर्धन्य विद्वान, पुरातत्वविद्, इतिहासकार व अनेक ग्रंथो के प्रदानकर्ता

मंगलाचरण –

यस्याङ्घ्रिपद्मं शरणाकतानां संसारिन्दुस्तरणैकपोतम् । दयानिधिं देहभृतां शरण्यं श्रीकार्दमार्यं शरणंप्रपद्ये ।।

जिनके चरणकरल शरणागत प्राणी के तैरने के लिए एक दृढनौका का रूप हैं, देह धारण करनेवालों के दयानिधि और शरणागतके शरणस्थानरूप श्री कर्दम प्रजापति के पुत्र श्री शांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान श्री कपिल महर्षि के शरणका मैं आश्रयकरता हूं ।।

सृष्टि के आदिकाल से ही सनातन वैदिक संस्कृतिका वैश्विक कल्याणमें अद्वितीय योगदान हैं। भारतवर्ष प्राचीनतम संस्कृति व सभ्याका उद्भमस्थान रहा है ऐसा कहना सर्वथा यथोचित ही हैं । विश्वकी अन्य सभ्याताओं में, विचारधाराओंमें और संप्रदायोंमें कई बाते हमारी सभ्यतासे सुसंगत है, यही उसका प्रमाण हैं । हमारी सभ्यता एवं संस्कृति पर अनेक विधर्मी आक्रमण हुए । कई प्रमाण नष्ट हुए और इतिहास बदले गए तथापि सत्य कभी छीपा नहीं रहता इस न्याय से आज इसी सभ्यता-योग-आयुर्वेदका विश्व आविष्कार कर रहा हैं । आज भी सनातन वैदिक संस्कृति सुपल्लवित हैं इसका मुख्य कारण यही हैं की हमने ब्रह्माण्ड के समग्र प्राणी के कल्याणकी प्रार्थना की हैं, न केवल किसी देश या जाति विशेष की । हमारे मत से सृष्टिके सर्जनका तपके बलसे हुआ हैं, फिर उसका विनाश कैसे हो सकता ? समग्र भारतकी पुनितरेणु के प्रत्येक कण तीर्थ हैं । तीर्थयात्रा हरेर्नाम स्मरणं तारकं मतम् तीर्थयात्रा हरि स्मरण ही मोक्षका कारण हैं । आज ऐसे ही एक प्राचीनतम महातीर्थ सिद्धपुरका हम परिचय करने जा रहे हैं ।

सिद्धपुर के कई नाम वैदिक व पौराणिक वाङ्मयमें है जैसे कि सिद्धक्षेत्र, श्रीस्थल, सिद्धपुर, सिद्धाश्रम, सिद्धपद, सुखानगरी इत्यादि । कालगणनाके आधार पर यह सिद्धपुर या श्रीस्थल का निर्माण काल सत्ययुगके प्रारंभ से ही माना जाता हैं । ऋग्वेदमें, गृह्यसूत्रोंमे व

श्रीमद्भागवतादि पुराणोमें भगवान् श्रीमाधवराय, श्रीकपिल, श्रीदधिचीऋषी, श्रीपरशुरामजी, श्रीवेदव्यास, पांडवों की कथाके साथ इस पुनित स्थानकी संगति प्राप्त हैं । प्रधानरूप से प्राचीन श्रीस्थल ही कालान्तरमें सिद्धक्षेत्र बना हैं, जो आज सिद्धपुर से प्रसिद्ध हैं ।

सिद्धक्षेत्र – श्रीमद्भगवद्गीता के विभूति योगमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रीमुख से कहा हैं **सिद्धानां कपिलो मुनिः** सिद्धोमें कपिल श्रेष्ठ हैं, जो स्वयं भगवानके ही अवतार हैं और उनकी जन्मभूमि सिद्धपुर हैं । भगवान कपिल के पिता महर्षि कर्दम ब्रह्माजी के पुत्र थे । सत्ययुगमें ब्रह्माजीने भगवान के आदेशसे सृष्टि सर्जनका कार्य अपने मानस पुत्रोकों सोंपा किन्तु इस असार संसारमें रस न लगनेसे वे विरक्त हो गए । ब्रह्माजी चिंता होने लगी और उन्होंने अपने दुसरे पुत्र कर्दम प्रजापति को यह मंगलकार्य सोंपा । कर्दम ऋषि तपस्वीओं और सिद्धोमें श्रेष्ट थे और सरस्वती के प्राची तट पर आश्रम बनाकर तपश्चर्या कर रहे थे । पुता ब्रह्माकी आज्ञाको शोरोधर्य करके, उत्तम रूपगुण सम्पन्न पत्नि प्राप्ति के लिए तपश्चर्या करने लगे । इस सिद्धक्षेत्र के तपोवनमें १०,००० वर्ष अनन्य भावसे श्रीहरिकी भक्तिका प्रारम्भ किया । तपश्चर्या का आश्रय श्रीहरिका आदेश ही था, यथा भगवानने साक्षात् दर्शन दिए और वर याचनार्थ आदेश दिया । श्री कर्दमने भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि आपकी इच्छा व पूज्य पिताश्री ब्रह्माजी के आदेशको सार्थक करने हेतु मुझे समान स्वभावयुक्त – मनोवृत्तानुसारिणी और गृहस्थाश्रममें धर्मार्थकाम को पूर्ण करनेवाली स्त्री प्राप्त हो । श्री हरिने अतिप्रसन्नता से वर देते हुए कहा कि स्वायंभव मनु (प्रथम मनु) राजा अपनी पत्नि शतरूपा के साथ अपनी विवाहयोग्य पुत्री देवहुति को लेकर, अपनी पुत्री के पाणी ग्रहणकी प्रार्थना करेंगे, तुम इस प्रस्तावको स्वीकार करना । इस प्रकार वर देकर भगवान् विष्णु अन्तर्ध्यान हो गए ।

भगवद्वचनानुसार कुछ ही कालमें श्रीमनुशतरूपा अपनी कन्या देवहूति को लेकर इस क्षेत्रमें आए । श्री कर्दमने उनका भव्यातिभव्य स्वागत किया । ऋषि के तप व तेजप्रभाको देखकर मनुशतरूपा आनन्दसागरमें निमग्न हो

गए और अपनी पुत्री को सृष्टि प्रारम्भके इश्वरीय कार्यके लिए ग्रहण करनेकी प्रार्थना की । श्रीकर्दम ऋषिने प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया और देवहूति से संयमपूर्ण गृस्थाश्रमका प्रारम्भ किया ।

देवहूति पतिसेवामें सदैव रत रहती थी । अपनी अस्मिता व अस्तित्वको पतिके सुखमें विलीन कर दिया था । ऋषिवर भी स्वयं सिद्ध थे । स्त्रीसहज भोक्तिक सुखोंको ध्यानमें रखते हुए, योगबल से अनेक प्रकारके सुन्दर खाद्य, पेय, स्नान, शयन, गायन-वादनादि अनेक आनन्दोल्लासके साधनों से सम्पन्न विमानमें (सृष्टिका प्रथम लक्षुरियस यान) देवहूतिके साथ आकाशमें पर्यटन किया और देवहूतिको प्रसन्न करके पुनः आश्रममें प्रवेश किया ।

देवहूति के साथ आनन्दयुक्त गृहस्थाश्रममें कर्दम ऋषिसे कला, अनसूया, श्रद्धा, हविर्भुवा, गति, क्रिया,ऊर्जा (अरून्धती), चिती व ख्याति आदि नव कन्याए उत्पन्न हुई, जो भारतवर्ष के नव खण्डोमें सिद्धऋषियोंके साथ ब्याही गई थी । अत्रि-वशिष्टादि महर्षियोंका यह सिद्धक्षेत्र ससुराल हैं और भगवान दत्तात्रेय का ननीहाल । गृहस्थाश्रमके पूर्णानन्द भोगके उपरान्त श्रीकर्दमजीने तपोवनमें जाकर विरक्त होनेकी अनुमति देवहूतिसे मांगी । देवहूतिने अतिनम्रभाव से कहा आपकी इच्छाका अनुसरण ही मेरा धर्म हैं, यद्यपि मुझे एक पुत्र हो जिसके सहारे मैं मेरा शेषजीवन व्यतीत कर सकू ऐसी मेरी प्रार्थना हैं, क्योकि पुत्रीयां तो अपने पतिके घर रहेगी, मैं यहा किसके सहारे रहूं । देवहूति की सनम्र प्रार्थनाको उचित मानते हुए, कर्दमजीने श्री भगवानसे उनके सदृश पुत्रकी याचना की । भगवानके सदृश त्रिलोकमें कोई हो ही नहीं सकता । इस बुद्धियुक्त वर को साकृत करने स्वयं श्रीहरि भगवान कपिल के स्वरूपमें स्वयं ही अवतरित हुए । इस अवसरपर स्वयं ब्रह्माजी सिद्धक्षेत्र पधारे और कहा कि तेरा ये पुत्र सिद्धोमें श्रेष्ठ और सांख्यशास्त्रका प्रणेता होगा । कालान्तरमें भगवान श्री कपिलने अपनी माता को सांख्यशास्त्रका उपदेश दिया । माताको मोहादि के बन्धन छूट गए । ब्रह्माजीकी पुत्री व अपनी परं सखी अल्पाने (अहल्या) देवहूतिके साथ सांख्यशास्त्रका श्रवण किया और ज्ञान प्राप्तकर जलरूपा हो गई जिससे **अल्पासरोवर** विद्यमान हैं । व्यास द्वारा वर्णित इस कथासे स्वयं भगवानका हृदय भावविभोर बन गया और अति

हर्षसे अश्रुधारा प्रवाहित हुई, जो हर्षबिन्दु सरोवरके रूपमें आज भी मुमुक्षुओंको वरदानरूप विद्यमान हैं । विश्वके चार महासरोवर मानसरोवर, **बिन्दुसरोवर**, पम्पासरोवर और नारायणसरोवर में से बिन्दु सरोवर यहां पर हैं । इसी प्रकार तीन महानदीयां गंगा, यमुना, **सरस्वती** का पावनतट यहां पर हैं। माता देवहूति ज्ञानरूप होकर मुक्ति को प्राप्त हुई जिससे **ज्ञानवापिका** (ज्ञानवाव) बनी । हर्षवति देवहूतिने पुत्र कपिलको निवेदन किया कि हे श्रेष्ठपुत्र मैं आज एक स्त्रीसहज प्रस्ताव रखती हूं कि विश्वकी सभी माताए इतनी भाग्यवति नहीं होती, जिसकी कुक्षीमें तेरे जैसे पुत्र हो । पुरूष तो स्त्रीकी अपेक्षा धर्मार्थमोक्ष साधन कर ही लेता हैं, किन्तु विश्वकी स्त्रीजाति क्या करेगी ? तु मुझ पुत्र होनेके नाते से एक वचन दे कि यहां पह किसी भी स्त्रमात्रका श्राद्ध मुक्तिका साधन बने । कपिलने वर दिया सिद्धक्षेत्रे तु देहूत्यां शिलायां मातृकीगया स्त्री कल्याणकी सर्वोत्कृष्ट भावनाका यह उद्गम था । सृष्टि सर्जनका उद्भम यह सिद्धक्षेत्र होनेके कारण कहा जाता हैं कि **सभीयात्रा हजारबार, सिद्धपुर जाओ एक बार**। लोकपितामह श्री ब्रह्माजीने ब्रह्मक्षेत्रमें याग सम्पादन करके सर्वप्रथम निवासार्थ सिद्धक्षेत्र की पसंदगी की थी तबसे यह **ब्रह्मतीर्थ** बना । एक श्रुत कथाके अनुसार स्वयं साक्षात् श्रीमहादेवजीने यहांपर निवास किया था, जिससे **रूद्रमहालयतीर्थ** के नामसे प्रसिद्ध हुआ । भगवान कर्दम स्वयं प्रजापति होनेसे उनका यह निवासस्थान **प्रजापतिक्षेत्र** स्वीकार करना भी युक्तियुक्त होगा । यह सिद्धक्षेत्र **रूद्रतीर्थ, विष्णुतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ** और मातृगया के प्राधान्यसे **मातृतीर्थ** के रूपमें प्रसिद्ध हुआ। पुराण ग्रंथोसे निर्देश मिलता हैं की पृथ्वी का जहाँ स्त्रीरूप से वर्णन किया गया है वहाँ जघनस्थानमे प्रयागराज और नाभीस्थानमें सिद्धक्षेत्र का नाम **नाभीगया** भी हैं । नाभी का संबंध सर्जन से हैं – हमारी पुष्टि नाभीद्वारा माता के शरीर से ही होती हैं, नाभी एवं माता का सीधा संबंध हैं । ब्रह्मा की उत्पत्ति भी विष्णुकी नाभी से जूडी हैं । इसक्षेत्र को **मधुस्रवागया** नामसे भी प्रसिद्धि मिली हैं । कई ऋषियोंका वचन हैं कि सिद्धपुर सर्वतीर्थोमें श्रेष्ट है क्योंकि गयासे स्वर्ग एकयोजन दूर हैं किन्तु सिद्धपुरके दर्शनमात्र समस्तपातक निवारण करते हैं और यहांसे स्वर्ग केवल प्रादेशमात्रकी दूरी पर ही हैं ।

महाराजा युधिष्ठिरकी सूचनानुसार पाण्डव कुछकाल यहां रहे थे और गुप्तावास के दौरान भी **दधिची आश्रम** (देथली) में कुछ काल रहे थे। महर्षि दधिची एवं पिप्पलाद की यह तपो भूमि रही हैं। (महाभारत वनपर्व अ.258-13, वामनपुराण अ 35)। भगवान श्री परशुरामने भी अपनी माता रेणुकाके शिरच्छेद का यहां मातृतर्पण करके प्रायश्चित किया था (श्रीमद्भागवत एवं महाभारत)। सर.माहात्म्य १६।२५-३७ में एक उल्लेख है कि महाभारतके युद्धके उपरान्त श्रीकृष्ण व अर्जून इसी क्षेत्रमें प्रायश्चितार्थ रहे थे । गरूडपुराण, स्कंधपुराण, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, वायुपुराण व ऋग्यजु संहिताओंमें इसके संदर्भ प्राप्त हैं। उपरोक्त कथनकी संगति के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं ...कर्दमाने गयानाभौ मुण्डपृष्ट समीपतः, स्नात्वाश्राद्धीनयेत्स्वर्गं पितृन्नत्वा च चण्डिकाम् । गयानाभौ पिण्डदाने पितृणां ब्रह्मपुरनयनं फलम्।। (वायु. वीरमित्रोदय तीर्थप्रकाशे च) विप्रावेदविदोऽथ शास्त्रनिपुणाः स्वाचारवन्तोऽवसन्, तेभ्यः श्रीसहितो हरिः प्रतिदिनं प्रादान्मनो वांछितम् । गुर्जरे विषये चास्ति क्षेत्रं श्रीस्थल संज्ञकम्, स्वच्छमौक्तिजालाढ्यं पताका तोरणोज्वलम्। भूषणं सर्वतीर्थानां सर्वर्तुफलितद्रुमम्, तापसैरपि सङ्कीर्णं वेदध्वनिविराजितम् । तत्र ब्रह्मादयोदेवा वसिष्ठाद्यास्तपोधनाः, तिष्ठन्ति मुनिशार्दुल सद्धाश्चैव सहस्त्रशः। बहूनि तत्र तीर्थानि देवाःसन्ति च भूरिशः, न रोगो न च मात्सर्यं श्रीस्थले न भयं क्वचित्।

श्री स्थल – श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध व अन्य पुराणोंमें भी एक कथा हैं। पूर्वकालमें सरस्वती नदीके तटासीन, विश्वकर्माने प्राची माधव भगवति श्री (लक्ष्मी) के साथ यहां निवास करने हेतु नगर बनाया था जिसका नाम श्रीस्थल हुआ । त्रेतायुग में महर्षि दुर्वासा के श्रापके कारण लक्ष्मीने त्रिलोकका त्यागकर सागरमें निवास किया, जिससे तीनोलोकमें कीर्ति, कान्ति ऐश्वर्य, प्रभा जैसी संपत्तिका लोप हुआ और फलतः यज्ञादि धर्मक्रियाओंका लोप हुआ । देवोंको यज्ञभाग और हविभाग न मिलनेसे चिंतीत होकर ब्रह्माजीके शरणमें गए । ब्रह्माजीने बताया की इस समस्त समस्याका कारण श्री (लक्ष्मी) का जलस्थ होना हैं और इसका निराकरण

विष्णुके सिवा कोई भी करनेको समर्थ नहीं है । ब्रह्माजी के साथ सभी देवता विष्णुके पास जा पहूंचे और श्रीलक्ष्मीजीके पुनरागमन की प्रार्थना कि । देवोंकी प्रार्थना पर विचार करते हूए, भगवान विष्णुने, देवोको समुद्रमंथनके लिए प्रोत्साहित किया क्योंकि समुद्रमंथन द्वारा ही लक्ष्मी पुनःप्राप्त हो सकती है । और भगवान स्वयं कूर्मावतार धारणकरके स्वयंकी पीठपर मंदराचलरूपी मन्थको धारण किया । चाक्षुष मन्वन्तके प्रारंभकालमें देवो व असुरो द्वारा समुद्रमंथन प्रारंभ हुआ । इससे १४ रत्नोकी प्राप्ति हुई, जिसमें स्वयं लक्ष्मीजीका प्रागट्य हुआ । देवों की प्रार्थनापर भगवानने श्रीलक्ष्मीजीको अपनी अर्धांगिनीके रूपमें स्वीकृत किया और समूद्रतटसे धूमते-धूमते सरस्वतीके पुनित तटपर आए और यहां श्रीलक्ष्मीजीको निवास करनेका मन हुआ, तब विश्वकर्माने श्रीस्थल नामक रमणीय नगरकी रचना की । तबसे आज पर्यन्त श्रीप्राचीमाधव श्रीलक्ष्मीजीके साथ यहांके क्षेत्राधीशके रूपमें आसीनस्थ हैं । वास्तवमें यहां श्री कपिलमुनि के साथ प्राचीमाधव, सिद्धमाधव और बिन्दुमाधव विराजमान हैं । इस क्षेत्राधिष्ठातृ श्री माधवरायजी के संदर्भमें एक लोककथा हैं । कच्छ गुजरात के भूजके समीप किसी किसानको स्वप्नमें माधवरायजीने दर्शन देकर कहा कि मैं तेरी भूमिपर हू, तु मुझे अपने निजस्थान सिद्धपुर में पहुचा दे । स्वप्नानुसार खेतमें से माधवरायकी मूर्ति प्राप्त हुई और किसान इसे शकटमें लाकर सिद्धपुरकी किसी निर्जन स्थान पर छोडकर चला गया । निवासी लोगोनें इस दिव्य विग्रहका दर्शन किया और संवत १८५४ माघ शुक्ल १३ के दिन पूर्ण वैदिक परंपरा से नगरके मध्यमे प्रतिष्ठित किया । आज नगर के मुख्य **गोविंदमाधव मंदिर** के रूपमें प्रसिद्ध हैं ।

सिद्धपुर – विक्रम संवत ११०० के समीप के समयमें सोलंकी वंश का सूर्योदय पूर्णरूपसे हो गया था । सारस्वतमण्डल का पुराणों-इतिहासमें वर्णन हैं वही स्थान गुर्जरप्रान्त हैं और महाराज मूळराज अतिपराक्रमी एवं शिवभक्त थे । उन्होंने अपने प्रखर कलाधर एवं ज्योतिर्विद प्राणधरजी की प्रेरणासे रूद्रमहालय निर्माणका प्रारम्भ किया, किन्तु इस अभियानकी की पूर्तिके पूर्व ही उनका देहांत हो गया । अनुगामी महाराज भीमदेव से भी

यह भगीरथ कार्य पूर्ण न हुआ। उनके अनुगामी राजा करणदेव भी अति पराक्रमी एवं तेजस्वी थे। अपने अप्रतिम बुद्धिप्रतिभायुक्त अमात्य मुंजाल महेता की प्रेरणासे उन्होने कर्णाटक प्रदेशके राजा जयकेशिकी की अति स्वरूपवान, दक्ष एवं प्रतिभासम्पन्न पुत्री मिनलदेवी के साथ लग्न किया। विक्रम संवत् ११३५ के समयमें राजा आशाभिल्ल को पराश्त करके उनकी नगरी आशापल्ली का नाम करणावती रखा था जो आप अहमदावाद के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। तीस वर्ष तक गुर्जरदेशको शासित करके परमधामको चल गए और राज्यासन पर उनके सिद्धराज जयसिंह आरूढ हुए। राजमाता मिनलदेवी एवं महामात्य मुजाल महेता की प्रेरणा से रूद्रमहालयका निर्माणकार्य पुनः प्रारम्भ हुआ और पूर्ण भी हूआ। लोकचाहनाको मान देते हुए इस सिद्धक्षेत्रका नाम सिद्धपुर हुआ। सोलंकी वंशके इस भगीरथ कार्यको संमपन्न करके भगवान शिवजी की प्राणप्रतिष्ठा हेतु महायज्ञ के लिए उत्तर भारत के सर्यूतट से १०८, काशीक्षेत्र से १००, नैमिषारण्य से १००, गंगा यमुना प्रयागतट से १०५, कुरूक्षेत्र से २०४, कान्यकुब्ज से २०० बंगाल-तिरहत से १०० एवं स्थानिक १२० मिलाकर १०३७ (९९८ यजुर्वेदी, १७ ऋग्वेदी, १७ सामवेदी, ५ अथर्ववेदी) विद्वान ब्राह्मणो द्वारा यज्ञकार्य सम्पन्न करवाया (समय वि.सं. १०५० से १०५४ शक ९१० से ९१४ इ.सन् ९९९ से १००३) और दक्षिणामें भूमि और गांव दिए। आज भी सिद्धपुर ब्राह्मणोकी और विद्वानों की नगरी मानी जाति हैं। आज भी पूरे भारतवर्षमें काशी एवं सिद्धपुर के ब्राह्मण परम वंदनीय माने जाते हैं। यहां अधिक संख्यामें ब्राह्मण निवास करते हैं यथा ब्राह्मणों की नगरी भी मानी जाती हैं। यहां ऐतिहासिक नगरी पाटन मात्र २५ कि.मी. एवं पाटीदारों की कुलाम्बा श्री उमियामाताका पावनधाम मात्र १३ कि.मी. हैं।

विद्वानों व सिद्धों की नगरी सिद्धपुर – सिद्धपुरमें आदिकाल से देव-गंधर्व-ऋषियों का निवास रहा हैं। सृष्टिके सर्जनकर्ता ब्रह्मा-विष्णु-महेश की यह पुनित भूमि हैं। आगे भी बताया हैं वैसे तबसे आज पर्यन्त अनेक सिद्धों ने अपनी कर्मभूमि बनाया हैं। श्री माधवतीर्थजी महाराज, श्री चन्द्रशेखर सरस्वति, श्री हरिहरानन्दजी, श्री करपात्री, श्री गंगेश्वरानन्दजी, श्री

सत्यदेवजी महाराज, श्री रंगावधूत, श्री वासुदेवानन्द सरस्वति, श्री रामचन्द्र डोंगरेजी महाराज जैसे भगवद्स्वरूप महापुरूषोने भी इस पुनितरेणुको बारबार शिरोधार्य किया हैं । यहां के सिद्धोंमें श्री जेरीबाबा, श्रीदुधलीमलजी, श्री देवशंकर भट्टजी (गुरू महाराज) जैसे स्थानिक महर्षि हो गए । विद्वानों की इस पुनित भूपर श्री जयदत्त शास्त्री, श्री जयदुर्गे महाराज जैसे महानुभाव हो गए जिनका नाम आज पूरे भारतवर्षमें सादर लिया जाता हैं । श्री बटुकशास्त्री, श्री मफतलाल अग्निहोत्रीजी, श्री राधाकृष्ण शुक्ल, श्री नरहरि शास्त्री, श्री वासुदेव शास्त्री, श्री अंबालाल शुक्ल, श्री भानुशंकर शुक्ल, श्री दुर्गाशंकर शुक्ल, श्री बचुभाई शुक्ल, श्री मूळशंकर पुराणी, श्री गोविंदलाल पुराणी, श्री नटवरलाल पुराणी, श्री नरोत्तम जोषी, श्री नटवरलाल त्रिवेदी, श्री इश्वरलाल त्रिवेदी, श्री विठ्ठल शास्त्री, श्री हंसानन्दजी महाराज जैसी अनेक विद्वद्विभूतिया इस पुनित भूमि को गौरव प्रदान कर ब्रह्मलीन हो गई । यहां की विद्वद् परंपरा कायम रखनेमे श्री राधाकृष्ण शुक्ल, श्री देवशंकर पुराणी, श्री नवीनभाई पाध्या, श्री विष्णुभाई जोषी, श्री वासुदेव शास्त्री, श्री हरेशभाई शास्त्री, श्री प्रेमवल्लभ शर्मा, श्री चंदुभाई गुरू, श्री विठ्ठल शास्त्री जैसे अनेक विद्वानोंने वंदनीय प्रयास किए थे और जिसके फलस्वरूप नष्टप्राय होती विद्वत्ता को कुछ बचा पाए हैं । इसके अतिरिक्त यहां श्री जयदत्त शास्त्रीजी, जो भारत के दार्शनिक शिरोमणी थे, उनके स्थान पर एक पाठशाला चलती थी । ऐसे ही तंत्र सम्राट श्री जयदुर्गेजी महाराज के वहां भी ऐसी ही पाठशाला चलती थी । वर्तमान कालमें विश्वको कुछ दे सकें ऐसे विद्वानोमें श्री हरेशभाई (हाला शास्त्री) – श्री परशुराम, श्रीऋषिकुमार, श्रीहरेशभाई शुक्ल जैसे कुछ ही युवा विद्वान बचे हैं । आनेवाले कलमें विद्वानों की इस धरती पर विद्वत्ता होगी या नहीं – एक महाप्रश्न हैं । यहां की औदच्य सहस्त्र ब्राह्मण ज्ञातिमें पहले अपनी परंपरा को कायम करनेके लिए अंबावाडीमें श्रीराधाकृष्ण शुक्ल द्वारा एक वैदिक पाठशाला प्रारम्भ करनेका गौरवपूर्ण कार्य किया था । इतने बडे ज्ञाति समुदाय का नेतृत्व आज कुछ मर्यादित-कुण्ठित बुद्धिमनीषायुक्त हो गया है । ब्राह्मणत्व के गौरव की दिशा या तो उनसे उपेक्षित है या उनकी प्रज्ञा केन्द्र के बहार हैं । वे केवल समुह लग्न-यज्ञोपवित एवं ज्ञातिभोजन

तक सीमित हो गये हैं । समग्र ब्रह्माण्ड का उद्गमबिन्दु उनसे अछूता रह गया हैं। यहां एक गोपाल-कृष्ण संस्कृत पाठशाला भी हैं, जहां जिज्ञासुओकी संख्या पूर्वकी अपेक्षा अति कम हैं । जिस विद्वद् परंपरा के कारण सिद्धपुर विश्ववंद्य हैं, इस विद्वत्ता की घरोहरको कायम करनेके क्षेत्रमें स्थानिक विद्वदवर्ग उत्साही हो ऐसी भगवान श्रीकपिल के श्री चरणों में प्रार्थना ।

सिद्धपुरनगर विशेष – सिद्धपुर पूर्व रेखांश 072.23 एवं उत्तर अक्षांस 023.55 पर स्थित है । अहमदाबाद – दिल्ली की रेल लाईन पर महेसाणा एवं पालनपुर के बीच इस प्रसिद्धक्षेत्र हैं । यहां अहमदाबाद व आबुरोड से सीधी राज्य बस व्यवस्था हैं । अहमदाबाद से 115 कि.मी की दूरी पर रेलयात्रा से 2.30 घंटेमें यहां पहूंच सकते हैं । नगरके पूर्व सरस्वती नदी प्रवाहित हो रही हैं। अनेक ऐतिहासिक व धार्मिक परिसरों की नगरी हैं । यहां का औद्योगिक शून्य के बराबर ही हैं । यहां कुछ समय पहले कपडे की दो मीलें थी, जो आज बंद पडी हैं । यहां का इसबगोल विश्वविख्यात हैं । गोकुल ऑईल मील को छोडकर कोई बडा उद्योग यहां आज नहीं हैं । एनेक दर्शनीय एव पावन स्थानेवाले सिद्धपुर को यथार्थरूप में आजका भारत नहीं जान सका इसके लिए स्थानिक नेतृत्वकी उपेक्षावृत्ति ही मूल कारण हैं । सिद्धपुर से अहमदाबाद की स्थिति – दूरी साधनव्यवस्था इत्यादि निम्नानुसार हैं ।

यहां ब्राह्मणोंके अतिरिक्त मुस्लिम दाउदी वोरा भी ज्यादा हैं । लोककथानुसार ब्राह्मणोंको अल्लाउद्दीन खिलजीनं बलात् धर्मान्तर कराया था । आज भी वहोरवाड में उनके बडे और सुंदर नक्शीकलायुक्त मकान नगरकी शोभा बने हुए हैं । एक मकान अति प्रसिद्ध हैं जिसमें ३६० दरवाजें व खिडकियां हैं ।

सिद्धपुर के दर्शनीय स्थल का पौराणिक परिचय

श्री ब्रह्माजी – ब्रह्मकुण्ड और श्री ब्रह्माण्डेश्वर महादेव – श्री मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा इस स्थानका निर्माण हुआ था । कार्तिक शुक्ल ११ से १५ पर्यन्त यहां नदीके किनारे स्नानादिसे महत्पुण्य प्राप्त होता हैं (सर.

महा.१६।९७ से १०१) । वैदिककाल में श्री ब्रह्माजीने यहां निवास किया था और अनेक महायज्ञ किए थे । उनके द्वारा यहां एक ब्रह्मकुण्ड व यूप का निर्माण भी हुआ था । यहां मान्यतानुसार एक रात्रि निवास से मनुष्यको ब्रह्मलोक प्राप्ति होती हैं । इसका संदर्भ महाभारतके वनपर्व ८४-८५ तथा अनु.२५-५८ में मिलता हैं । आज यहां यूप एवं कुण्डका अस्तित्व नहीं हैं । दशनामी गोस्वामी संप्रदायोमें से भारती एवं पुरी के यहां दो मठ आज भी हैं । सभी संप्रदायोका यह उद्गमस्थान भी हैं ।

श्री ऋणमक्तेश्वर - (ऋणमोक्ष) महादेव और पापमोक्षेश्वर (पाण्डवामुखेश्वर) महादेव को वंदन करें । सरस्वती के उत्तर तटासीन श्री चम्पकेश्वर महादेव यात्रा का प्रथम तीर्थ हैं, उनका यथालाभ दर्शन पूजन करके कुछ ही दूरी पर श्रीसंगमेश्वर तीर्थ हैं ।

श्री संगमेश्वर तीर्थ - सुदीर्घकाल पूर्व यमुना और सरस्वतीका पुण्य संगम इस स्थान पर होता था । भौगोलिक परिवर्तनों के कारणवश यह दूर हटता हुआ आज उत्तरभारत के गंगाके साथ यमुनाका संगम तीर्थराज प्रयाग में होता हैं, इसी तथ्यके साक्षित्वमें यहां संगमेश्रव तीर्थ स्वीकृत किया गया हैं । आज भी कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको त्रिवेणी संगम होनेकी श्रद्धा लोकमानसमें विद्यमान हैं और उसीदिन स्नानका एवं मृतपूर्वजोको दीपदानादि का विशेष महत्व हैं । चंपकेश्वरका अपरनाम संगमेश्वर भी हैं । यहाँ से वडवानल (श्रीमद्भावत की देवदानव संग्राम व पिप्पलाद द्वारा वडवानलकी उत्पत्ति) ब्रह्मपुत्री कुमारिका सरस्वतीने मस्तकपर धारण किया था और वडवानल के प्रचण्ड तापसे संतप्त होकर व्याकूलतासे भूमिपर जानुभाग से चलने पर देवोने यहां (स्वयंभू) श्री अडवडेश्वर महादेवको प्रगट किया । यहां महाकाल नामक एक शिवगण था और शिवकी परमाराधानाके दिव्यप्रभावसे वह कैलाशिनस्थ हो गया ।

श्री वालखिल्याश्रम और वालखिल्येश्वर महादेव – सुदीर्घकाल पूर्व क्रतुकी सन्ताति नामक भार्याने विश्व कल्याणार्थ अंगूठेके पौरूओंके समान शरीरवाले सूर्यके समान तेजस्वी ६०००० ऊर्ध्वरेता ऋषियोंको जन्म दिया - श्रीविष्णुपुराण प्रथमांशे १०-१०, महाभारत आदिपर्व ३१ श्लोक ५ से २१,(वालखिल्यास तपः सिध्था मुनयः सूर्यमण्डले उञ्छम उञ्छन्ति धर्मज्ञाः शाकुनीं

वृत्तिम आस्दिताः – महाभारत सभावर्व – उद्योगपर्व - महाभारत १२९), स्कंद.नागरखंड - सरस्वति महा. अ.१६।७०-७१ । ऋषियोंने उग्रतप किया और तपफल महर्षि कश्यपको प्रदान किया । तपके प्रभावसे कश्यपकी पत्नि विनता के गर्भ से बद्रिकाश्रममें गरूडजी का जन्म हुआ । उनके जन्मसे पूर्व ही अपने ज्येष्ठ भ्राता अरूणसे विनता शापित होनेके कारण दासीत्व प्राप्त हुई थी । श्री गरूडजीने अपने सामर्थ्यसे विष्णुवाहन की योग्यता प्राप्त की और इसी सिद्धक्षेत्रमें (जो उनके जन्म की कारणभूमि थी) अल्पा सरोवर (ब्रह्माजीकी पूत्री का ज्ञानके कारण जलरूप होना) में दासत्व मुक्तिहेतु स्नान करवाया जिसके प्रभावसे उनकी मुक्ति हुई । अन्यत्र, वालखिस्या जटाधरश्च्चीरचर्मवल्कलपरिवृताः कार्तिक्या पौर्णमास्यां पुष्पफलमुत्सृजन्तः शेषानष्टौमासान् वृत्त्युपार्जनं कृत्वाग्निपरिचरणं कृत्वा पढ्चमहायज्ञक्रियां विवर्तयन्तमात्मानं प्रार्थयन्ते ।

श्री परशुराम मंदिर - परशुराम रामायण काल के मुनी थे। भृगुश्रेष्ठ महर्षि जमदग्नि द्वारा संपन्न पुत्रेष्टि-यज्ञ से प्रसन्न देवराज इंद्र के वरदान स्वरूप पत्नी रेणुका के गर्भ से वैशाख शुक्ल तृतीया को विश्ववंद्य महाबाहु परशुरामजी का जन्म हुआ। वे भगवान विष्णु के आवेशावतार थे। पितामह भृगु द्वारा संपन्न नामकरण-संस्कार के अनन्तर राम, किंतु जमदग्निका पुत्र होने के कारण जामदग्न्य और शिवजी द्वारा प्रदत्त परशु धारण किए रहने के कारण परशुराम कहलाए। आरंभिक शिक्षा महर्षि विश्वामित्र एवं ऋचीकके आश्रम में प्राप्त होने के साथ ही महर्षि ऋचीक से सारंग नामक दिव्य वैष्णव धनुष और ब्रह्मर्षि कश्यपजीसे विधिवत अविनाशी वैष्णव-मंत्र प्राप्त हुआ। तदनंतर कैलाश गिरिश्रृंगस्थित भगवान शंकर के आश्रम में विद्या प्राप्त कर विशिष्ट दिव्यास्त्र विद्युदभि नामक परशु प्राप्त किया। शिवजी से उन्हें श्रीकृष्ण का त्रैलोक्यविजय कवच, स्तवराज स्तोत्र एवं मंत्र कल्पतरूभी प्राप्त हुए। चक्रतीर्थ में किए कठिन तप से प्रसन्न हो भगवान विष्णु ने उन्हें त्रेता में रामावतार होने पर तेजोहरण के उपरांत कल्पान्त पर्यंत तपस्यारत भूलोक पर रहने का वर दिया । वे शस्त्रविद्या के महान गुरु थे। उन्होंने भीष्म, द्रोण व कर्ण को शस्त्रविद्या प्रदान की थी। उन्होंने एकादश छन्दयुक्त शिव पंचत्वारिंशनाम स्तोत्रम्भी लिखा । वे पुरुषों के लिए आजीवन एक पत्नी-व्रत के पक्षधर थे। उन्होंने अत्रि-पत्नी अनसूया

अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा व प्रिय शिष्य अकृतवण के सहयोग से नारी-जागृति-अभियान का विराट संचालन भी किया। अवशेष कार्यो में कल्कि अवतार होने पर उनका गुरुपद ग्रहण कर शस्त्रविद्या प्रदान करना शेष है। श्रीमद्भागवत में दृष्टांत है कि गंधर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ विहार करता देख हवन हेतु गंगा-तट पर जल लेने गई माता रेणुका आसक्त हो गई। तब हवन-काल व्यतीत हो जाने से क्रुद्ध मुनि जमदग्निने पत्नी के आर्य मर्यादा विरोधी आचरण एवं मानसिक व्यभिचारवश पुत्रों को माता का वध करने की आज्ञा दी। अन्य भाइयों द्वारा साहस न कर पाने पर पिता के तपोबल से प्रभावित परशुराम ने उनकी आज्ञानुसार माता का शिरोच्छेदन एवं समस्त भाइयों का वध कर डाला, और प्रसन्न जमदग्नि द्वारा वर मांगने का आग्रह किए जाने पर सभी के पुनर्जीवित होने एवं उनके द्वारा वध किए जाने संबंधी स्मृति नष्ट हो जाने का ही वर मांगा। भगवान ने मातृदोष से मुक्त होनेके लिए यहां प्रायश्चित करके नारी-जागृति-अभियान का संचालन किया था। यह कथा महाभारत-रामायण एवं भागवदादि अनेक पुराणोंमें हैं।

श्री पिण्डतारक तीर्थ - प्राची सरस्वती के पावन तट पर पिण्डताकर तीर्थ हैं। यहां शतवर्ष पर्यन्त ब्रह्माजीने पिण्डयज्ञ किया था। यहां पिण्डदान, स्नान एवं दानका अति महत्त्व हैं।

श्री नर तीर्थ एवं अश्व तीर्थ - महाभारतके युद्धके उपरान्त भगवान् श्री कृष्ण और अर्जूनने स्नानादि करके यहां प्रायश्चित किया था, तब से यह नर (अर्जून) तीर्थ माना जाता हैं। प्रायश्चित्तार्थ विष्णुपूजन के लिए श्री कृष्णार्जूनने यहां पुण्डरीक (पापहा पुण्डरीकाक्षाय नमः) भगवान के श्रीविग्रह की स्थापना की थी, जिसका आज अस्तीत्व नहीं हैं, यद्यपि अश्वतीर्थ की संगति प्राप्त होती हैं।

श्री महोदय एवं श्री एकद्वार तीर्थ - प्राचीन कालमें हिमालय से आनेवाली नदींयों में सरस्वती का काल गंगावतरणसे एवं यमुनाजी से भी पूर्वका हैं। कालान्तरमें गंगा-यमुनाका प्रवाह इसके साथ संगम करता था यथा इसे महोदयतीर्थ नाम मिला और पुराणेतिहासानुसार पूर्वकालमें कुशकेतुराजा सपरिवार इन्द्रके आदेशसे यहां (सरस्वतीमें) स्नान-दानादि करके स्वर्गको

प्राप्त हुआ था । स्वर्गका द्वार होनेसे इसे एकद्वारतीर्थ कहा गया है । यहां स्नान-दानादिका विशेष महत्व हैं ।

श्री मार्कण्डेयाश्रम, अक्षयवट एवं सिद्धचामुण्डा – श्री मार्कण्डेय मुनिने इसी स्थानपर सरस्वती महापुराण की रचना की थी । यहां सिद्धेश्वर महादेव का मंदिर भी है, जो महर्षि मार्कण्डेय के परमाराध्य थे । श्री मुरलीमनोहर मंदिर (खाकचौक) ही यह पुनित स्थान हैं । इसके पृष्टभागमें सिद्धकूप (प्राचीन ज्ञानवापी) हैं और कुछ ही कदमकी दूरी पर सिद्धचामुण्डा (महाकाली) का मंदिर हैं । *अक्षयवटवटेश प्रपितामहाग्रे रूक्मिणीकुण्डं तत्पश्चिमे कपिलानदी तत्तीरे कपिलेश्वरः* यहां एक अक्षयवट भी था जो आज प्रायः नहीं हैं ।

श्री हर्षबिन्दु सरोवर, अल्पा सरोवर, मातृगया तीर्थ, श्रीकर्दमाश्रम, श्रीगूहतीर्थ एवं गूहेश्वर महादेव - ये सभी स्थान एक ही जगह पर हैं । इन सबका आधार एवं संगति अनेक इतिहास (रामायण-महाभारत), पुराणो में हैं यद्यपि श्रीमद्भागवतमें स्कंध ३।२१।३८-३९ एवं ३।३३।३१ में उपलब्ध हैं । श्री बिन्दुसरोवर, अल्पा सरोवर एवं मातृगया के संदर्भमें आगे बताया गया हैं । बिन्दु सरोवर पूरे भारतवर्षमें चार स्थानमें हैं - १ सिद्धपुर, २ भुवनेश्वर (जगन्नाथपुरी), ३ कुरूक्षेत्र एवं ४ हिमालयमें सरयूनदीका उद्भम स्थान । किन्तु पुराणोमें बिन्दुसरोवर, सिद्धक्षेत्र, कर्दमाश्रम, सरस्वती नदी के साहचर्यकी बात लिखी हैं जो केवल सिद्धपुरमें ही मिलती हैं । कर्दमाश्रम जो आज कदमवाडी के नाम से प्रसिद्ध हो गया हैं, जहां परम वैष्णव श्री महाप्रभुजीकी बैठक हैं । महर्षि कर्दम यहां आयुर्वेद एवं औषधिय संशोधन करते थे । श्री कपिल भगवानने जहां माताको सांख्यशास्त्रका उपदेश किया और अंतमें माताको वर दिया कि *सिद्धक्षेत्रे तु देहुत्यां शिलायां मातृकी गया* वही मातृगयातीर्थ बना । यहां पर एक नयी ज्ञानवापीका हैं जिसका नाम गूहतीर्थ हैं । यहां श्री गयागदाधर भगवान के समीपमें ही गूहेश्वर महादेव का मंदिर हैं । प्राचीन कालमें भगवान कार्तिक (गूह) ने इसकी स्थापना की थी । यहां भगवान श्रीगूह का श्रीविग्रह भी विराजमान हैं ।

श्री दधिस्थली (देथली) – देहस्थली – महर्षि दधिची की यह तपोभूमि हैं। भारतवर्ष के सभी दधिच ब्राह्मणों का यह मूल स्थान हैं। उनके पुत्र पिप्पलाद अथर्ववेदीय शाखा प्रवर्तक ऋषि थे। प्रश्नोपनिषद ब्राह्मण उनका ज्ञानप्रसाद हैं।

प्राचीन काल में दधीचि नाम के एक महर्षि थे। उनकी पत्नी का नाम गभस्तिनी था। महर्षि वेद-शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे और स्वभाव के बड़े ही दयालु थे। अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं गया था। वे सदा दूसरों का हित करना अपना परम धर्म समझते थे। उनके व्यवहार से उस वन के पशु-पक्षी तक संतुष्ट थे, जहाँ वे रहते थे। गंगा के तट पर ही उनका आश्रम था। जो भी अतिथि उनके आश्रम पर आता था, उसकी महर्षि और उनकी पत्नी श्रद्धा भाव से सेवा करते थे।

एक दिन की बात है, महर्षि के आश्रम पर रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, इंद्र, विष्णु यम और अग्नि आए। देवासुर संग्राम समाप्त हुआ था जिसमें देवताओं ने दैत्यों को परास्त कर दिया था। विजय के कारण सभी देवता हर्षित हो रहे थे। उन्होंने आकर यह प्रसन्नता-भरा समाचार महर्षि को सुनाया। महर्षि ने उक्त देवताओं का समुचित स्वागत किया और उनके आने का कारण पूछा। देवताओं ने कहा, "हे भगवान् ! आप इस पृथ्वी के कल्पवृक्ष हैं। आप जैसे तपस्वी ऋषि की यदि हमारे ऊपर कृपा हो तो हमारे मार्ग में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं हो सकती। "हे मुनिश्रेष्ठ ! जीवित मनुष्यों के जीवन का इतना ही फल है कि तीर्थों में स्नान, समस्त प्राणियों पर दया और आप जैसे तपस्वी महर्षि के दर्शन करें। इस समय हम दैत्यों को परास्त करके आए हैं और इसके पश्चात् आपके दर्शन करके हमारी प्रसन्नता दूनी बढ़ गई है। अब हमारे पास ये अस्त्र-शस्त्र हैं। इनका बोझ अब हम नहीं ढो सकते और यदि इन्हें ले जाकर स्वर्ग में रख भी दें तो हमारे शत्रु किसी तरह पता लगाकर कभी भी इन्हें ले जा सकते हैं, इसलिए हमारा विचार इन अस्त्र-शस्त्रों को आपके आश्रम पर ही रखने का है।"हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि आप आज्ञा दे दें तो इन्हें हम यहीं छोड़ जाएँ। इससे अधिक उपयुक्त स्थान हमें नहीं मिल सकता, क्योंकि यहाँ से दैत्य इनको चुराकर नहीं ले जा सकेंगे।

"हे भगवन् ! आपकी तपस्या के प्रभाव से आपका स्थान परम सुरक्षित है। इसलिए हम अपने अस्त्र-शस्त्रों को यहाँ छोड़कर निश्चिंत होकर अपने लोक को जाना चाहते हैं। आप इसके लिए आज्ञा दीजिए।"देवताओं की बात सुनकर महर्षि दधीचि ने अपने सरल स्वभाव के कारण कह दिया, "देवताओं ! मेरा जीवन तो सदा दूसरों के उपकार के लिए ही व्यतीत हुआ है और इसी तरह होगा। तुम अपने अस्त्र-शस्त्रों को यहाँ रख सकते हो। मुझे इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है।" जिस समय महर्षि ने यह कहा था, उस समय उनकी पत्नी भी वहाँ खड़ी थी, उसने रोकते हुए कहा, "ऐसा विरोध उत्पन्न करने वाला कार्य मत करिए स्वामी ! दैत्यों को जब पता चलेगा कि देवताओं के अस्त्र-शस्त्र हमने छिपाकर रख दिए हैं तो वे हमारे शत्रु हो जाएँगे और हर प्रकार से हमें कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। आपको इस बीच में पड़ने की क्या आवश्यकता है ? "हे स्वामी ! जो शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके परमार्थ-तत्त्व में स्थित हो चुके हैं, संसार के कार्यों में जिनकी कोई आसक्ति नहीं है, उन्हें दूसरों के लिए संकट मोल लेने से क्या लाभ ? आप सोचिए तो प्राणनाथ ! यदि इन अस्त्र-शस्त्रों में मानो कोई चोरी चला गया तो देवता भी हमारे शत्रु हो जाएँगे, उधर दैत्य हर प्रकार से इनको छीनने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार व्यर्थ चित्त की शांति नष्ट होगी। फिर आप तो वेद के ज्ञाता हैं, आपको इस पराए धन से ममत्व जोड़ना किसी प्रकार उचित नहीं है। साधु पुरुष में यदि धन देने की शक्ति हो तो बिना किसी प्रकार का विचार किए उसे याचक को धन दे देना चाहिए। यदि धन देने की शक्ति न हो तो साधु पुरुष को केवल मन, वाणी तथा शारीरिक क्रियाओं के द्वारा दूसरे का उपकार करना चाहिए लेकिन पराए धन को धरोहर के रूप में अपने यहाँ रखना साधु के लिए किसी प्रकार भी उचित नहीं है। पूरी तरह परिस्थिति पर विचार करके आप देवताओं को उनके अस्त्र-शस्त्र लौटा दीजिए।"

पत्नी की बात सुन दधीचि ने कहा, "प्रिये ! तुम्हारा कथन उचित है, लेकिन अब मैं देवताओं को वचन दे चुका हूँ। यदि अब तुम्हारे कहने से इन अस्त्र-शस्त्रों को रखने की अस्वीकृति प्रकट करूँगा तो देवताओं के हृदय में मेरे प्रति सम्मान कम हो जाएगा और अपने वचन को वापस लेकर मेरे हृदय में

भी प्रसन्नता नहीं होगी। इसलिए अब तो जो कुछ हो गया वही उचित है।" अपने पति की यह बात सुनकर गभस्तिनी आगे कुछ नहीं बोली। देवता निश्चिंत होकर चले गए। जब दैत्यों को पता चला कि देवताओं के अस्त्र-शस्त्र महर्षि के आश्रम पर हैं तो वे अनेक प्रकार के उपद्रव मचाने लगे और महर्षि को यह शंका हो उठी कि कहीं दैत्य इन अस्त्र-शस्त्रों को चुराकर न ले जाएँ। पूरे एक हज़ार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। देवता किसी प्रकार का समाचार तक लेने नहीं आए थे। तब एक दिन महर्षि ने अपनी पत्नी से कहा, "प्रिये ! देवताओं को गए पूरी एक सहस्राब्दी बीत गई, अभी तक उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्रों को आकर नहीं सँभाला। दैत्य महापराक्रमी हैं। उन्हें पता तो लग ही गया है कि देवताओं के अस्त्र-शस्त्र हमारे पास हैं, कहीं वे आकर उन्हें छीन न ले जाएँ। तब तो बड़ी विकट परिस्थिति उपस्थित हो जाएगी। उससे पहले हमारे लिए कौन-सा उचित मार्ग है, इस विषय में अपनी सम्मति प्रकट करो ?" उनकी पत्नी कोई उपाय सोचने लगी, लेकिन उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। तब महर्षि ने ही सोचकर कहा, "देवी ! यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं इन सभी अस्त्र-शस्त्रों को शक्तिहीन कर दूँ ?" गभस्तिनी ने यह बात स्वीकार कर ली। उसी क्षण महर्षि ने मंत्रोच्चारण करते हुए उन सभी अस्त्र-शस्त्रों को पवित्र जल में नहलाया और फिर वे उस सर्वास्त्रमय परम पवित्र और तेज-युक्त जल को पी गए। तेज निकलने से सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गए। धीरे-धीरे वे नष्ट हो गए।

इसके कुछ समय पश्चात् देवता महर्षि के पास आए और उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्रों को वापस माँगा। देवासुर संग्राम फिर प्रारंभ हो चुका था। दैत्यों ने अपनी शक्ति बढ़ाकर देवताओं पर आक्रमण कर दिया था। देवताओं के अस्त्र-शस्त्र माँगने पर महर्षि ने कहा, "आपके अस्त्र-शस्त्र तो मेरे शरीर के अंदर स्थित हैं ! पूरी सहस्राब्दी बीत गई, तब भी आप उन्हें लेने नहीं आए। तब मैंने इस भय से कि कहीं दैत्य इनको चुराकर न ले जाएँ, उन्हें मंत्रोच्चारण के साथ पवित्र जल से स्नान कराकर और उस जल को पीकर पूरी तरह शक्तिहीन कर दिया। अब उन सभी अस्त्र-शस्त्रों का बल मेरे शरीर में पहुँच चुका है, आप लोग जैसा कहें वैसा ही मैं करूँ !" महर्षि की बात सुनकर देवता विनीत स्वर में कहने लगे, "हे मुनिश्रेष्ठ !

अस्त्र-शस्त्रों के बिना तो हम निस्सहाय-से असुरों के हाथों मारे जाएँगे। आप किसी प्रकार शस्त्रों का प्रबंध करिए। आप जानते ही हैं कि दैत्य महापराक्रमी हैं और अबकी बार तो उन्होंने अपार सैन्य दल एकत्रित कर लिया है। किसी प्रकार हमारी रक्षा करिए !" यह सुनकर दधीचि बोले, "हे देवताओं ! मेरा उद्देश्य तुम्हारा अहित करने का कभी नहीं था। अब तो तुम्हारे सारे अस्त्र-शस्त्र मेरी अस्थियों में मिल चुके हैं। यदि तुम उनको ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो।" जिस समय महर्षि ने देवताओं के सामने यह प्रस्ताव रखा था, उसकी पत्नी कहीं बाहर चली गई थी। देवता उससे बहुत डरते थे। उसको वहाँ उपस्थित न देखकर उन्होंने कहा, "हे मुनीश्वर ! आप हमें अपनी अस्थियों को ही दे दीजिए, लेकिन करिए शीघ्रता।" दधीचि ने उसी समय समाधि लगा ली और अपने प्राण त्याग दिए। कुछ ही क्षण पश्चात् उनका शरीर निष्प्राण हो गया। यह देखकर देवताओं ने विश्वकर्मा से कहा, "हे विश्वकर्मा ! अब महर्षि की अस्थियाँ लेकर आप अनेक अस्त्र-शस्त्र बना डालिए।" विश्वकर्मा ने कहा, "देवताओं ! यह ब्राह्मण का शरीर है। मैं इसका उपयोग करते हुए डरता हूँ। जब केवल इनकी अस्थियाँ मात्र रह जाएँगी, तभी मैं इसमें हाथ लगाऊँगा और उनसे अस्त्र-शस्त्र का निर्माण करूँगा।" विश्वकर्मा के हृदय के भय को दूर करने के लिए देवताओं ने गौओं से कहा, "हे गौओ ! हम तुम्हारा मुख वज्र के समान कर देते हैं। तुम जाकर महर्षि दधीचि के निष्प्राण शरीर को विदीर्ण कर डालो और उनका अस्थिपंजर शेष छोड़कर बाकी सभी मांस को अलग कर दो।" देवताओं का आदेश मानकर गौओं ने जाकर महर्षि के शरीर को विदीर्ण कर डाला और केवल अस्थिमात्र ही खड़ी छोड़ दी। देवताओं ने प्रसन्न होकर उन अस्थियों को उठा लिया और वे उन्हें लेकर अपने लोक को चले गए। थोड़ी देर बाद ही महर्षि की पत्नी गभस्तिनी आई। उसके हाथों में पानी से भरा कलश था और उसमें कुछ पुष्प थे। वह अपने पति के दर्शनों के लिए लालायित होकर शीघ्रता से चलकर आई थी, लेकिन आश्रम पर महर्षि को न देखकर उसके हृदय में चिंता समा गई। वह घबराकर इधर-उधर पति को खोजने लगी। उस समय वह गर्भवती थी। जब कहीं भी पति को नहीं पा सकी तो उसने अग्निदेव से पूछा,"हे अग्निदेव ! मेरे पतिदेव आश्रम पर दिखाई नहीं देते, कृपा करके बताइए, वे कहाँ चले गए

हैं ?" अग्नि ने महर्षि के प्राण त्यागने का सारा वृत्तांत गभस्तिनी को कह सुनाया। पति की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनकर गभस्तिनी विलाप करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय पति के वियोग से उसके करुण क्रंदन को सुनकर वन के वृक्ष भी रोने लगे। अग्निदेव ने आकर उस कल्याणी को धैर्य बँधाया। उसने रोते-रोते कहा, "मैं देवताओं को शाप देने के लिए समर्थ नहीं हूँ, इसलिए स्वयं ही अग्नि में प्रवेश करूँगी। पति के बिना इस अभिशप्त जीवन को भी रखकर क्या होगा ? मेरा सर्वस्व चला गया, अब मैं भी जाकर परलोक में पति से मिलूँगी, तभी मेरी आत्मा को शक्ति मिलेगी। "हे अग्निदेव ! मैं अपनी इस देह को आपको समर्पण करती हूँ।"

अग्निदेव हर तरह से गभस्तिनी को समझाने लगे, लेकिन उसने प्राण त्यागने का पूरी तरह निश्चय कर लिया था। उसी समय उसने अपना पेट चीरकर गर्भ के बालक को बाहर निकाल लिया और फिर गंगा, पृथ्वी, आश्रम तथा वन के वृक्ष और लताओं को प्रणाम करके बोली, "मेरा यह बालक आपको समर्पित है। यह अभागा अपने पिता से तो हीन हो ही चुका है और अब माता से भी हीन हो जाएगा। "हे वन के वृक्षों ! इसकी रक्षा करना। तुम्हीं इसके माता-पिता हो।" यह कहकर महर्षि की पत्नी ने बालक को पीपल के समीप रख दिया और फिर वह स्वयं चिता जलाकर उसमें बैठ गई और अपने पति के पास दिव्य लोक को चली गई। जब आश्रम सूना हो गया और वन के पशु तथा पक्षियों को दयालु महर्षि और उनकी पत्नी नहीं दिखाई दिए तो वे वहाँ आकर विलाप करने लगे। रह-रहकर उन्हें ऋषि और ऋषि पत्नी के मधुर व्यवहार की याद आने लगी और वे एक-दूसरे से कहने लगे, "अब हम पिता दधीचि और माता गभस्तिनी के बिना किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकते। जिस स्नेहपूर्ण दृष्टि से ऋषि और ऋषि-पत्नी हमारी ओर देखा करते थे, उस तरह तो सगे माता-पिता भी नहीं देखते। हा ! हम कैसे पापी हैं कि अब उनके दर्शनों से वंचित होकर निस्सहाय-से इस वन में भटक रहे हैं। आज यह आश्रम कैसा श्मशान जैसा लग रहा है। नहीं तो ऋषि के उपस्थित रहते इसके चारों ओर वृक्षों का एक-एक पत्ता स्नेह से मुस्कराता रहता था। "हा विधाता ! संसार में वे भी कितने दुखी हैं जिनके माता-पिता स्वर्गवासी हो

चुके हैं।" यह कहकर वे सभी उस बालक के पास आए, जिसे ऋषि-पत्नी जन्म देकर छोड़ गई थी। उन्होंने उसके लिए सब प्रकार की व्यवस्था की। वनस्पतियों और औषधियों ने लाकर उसके लिए राजा सोम से अमृत माँगा। सोम ने सहर्ष अमृत दे दिया। वनस्पतियों ने उस अमृत को लाकर बालक को दे दिया। बालक दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। पीपल के वृक्षों ने उसका पालन किया था, इसलिए 'पिप्पलाद' के नाम से वह प्रसिद्ध हुआ।

जब पिप्पलाद बड़ा हुआ तो वह अपने आपको अकेला वन में पाकर वृक्षों से कहने लगा, "हे हम वन के वृक्षो ! सभी सौभाग्यशाली बालकों के माँ-बाप उनका लालन-पालन करते हैं, लेकिन मेरे माता-पिता ने मेरा पालन-पोषण क्यों नहीं किया ? वे कहाँ चले गए हैं, कृपा करके मुझे बताओ ?" बालक का सरल प्रश्न सुनकर वृक्षों को फिर ऋषि-पत्नी की याद आ गई और वे दुखी होकर रोने लगे। पिप्पलाद ने कौतूहलवश होकर पूछा, "श्रेष्ठ वृक्षो ! तुम इतने दुखी क्यों होते हो ?" तब वृक्षों ने पिप्पलाद से ऋषि का जीवन संबंधी सारा वृत्तांत कह सुनाया। उसे सुनते ही पिप्पलाद रोने लगा और कहने लगा, "हा विधाता। तूने मुझे इस पृथ्वी पर जन्म ही क्यों दिया ? मैं कैसा अभागा हूँ कि जिन माता-पिता ने मुझे जन्म दिया, उनका ही मुख नहीं देख पाया। जिस पुत्र को माता का स्नेह न मिला हो, उसका जीवन व्यर्थ है।" बालक के विलाप को सुनकर वृक्षों के हृदय भी हिल उठे। वे अनेक प्रकार से उसको धैर्य बँधाने लगे, लेकिन बालक निस्सहाय-सा रोता रहा और फिर देवताओं पर क्रुद्ध होकर उसने कहा, "जिन स्वार्थी देवताओं ने मेरे पिता के प्राण लिए हैं और जो मेरी माता के भी मृत्यु का कारण बने हैं, वे आज से ही मेरे शत्रु हैं। जब तक मैं उनका वध न कर लूँगा, तब तक धैर्य लेकर नहीं बैठूँगा। इस संसार में श्रेष्ठ पुत्र वही है जो अपने पिता के शत्रु को नष्ट करने की सामर्थ्य रखता है। देवताओं को नष्ट किए बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।" पिप्पलाद की यह प्रतिज्ञा सुनकर वृक्षों ने कहा, "हे सुव्रत ! तुम्हारी माता ने परलोक जाते समय यह उद्गार प्रकट किया था-जो मनुष्य दूसरों के द्रोह में लगे रहते हैं, या जो अपने कल्याण की बातें भूलकर भ्रांतचित्त होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं, वे नरक के गर्त में जाकर गिरते हैं।"

माता की इस बात को सुनकर पिप्पलाद ने असंतुष्ट होकर कहा, "श्रेष्ठ वृक्षों ! माता ने कुछ भी कहा हो, लेकिन जिसके अंतःकरण में अपमान की आग प्रज्वलित हो रही हो, उसके सामने साधुता की बातें करना व्यर्थ है। मैंने तो शत्रुओं का ध्वंस करने की प्रतिज्ञा कर ली है। उसे पूरा किए बिना मैं चैन से नहीं बैठ सकता।" यह कहकर पिप्पलाद चक्रेश्वर महादेव के स्थान पर गया और वहाँ बैठकर भगवान् शंकर की आराधना करने लगा। पिप्पलाद की आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उसे दर्शन दिया और वर माँगने के लिए कहा। पिप्पलाद ने कहा, "हे महादेव ! मैं अपने शत्रु देवता को नष्ट करने के लिए शक्ति चाहता हूँ।" उसी समय भगवान् शंकर के नेत्रों से भयंकर कृत्या प्रकट हुई। उसकी आकृति बड़वा के समान थी। संपूर्ण जीवों का विनाश करने के लिए उसने अपने गर्भ में अग्नि छिपा रखी थी। मृत्यु के-से भयानक आकार वाली वह कृत्या निकलकर पिप्पलाद से कहने लगी, "हे भद्र ! बोलो, मैं तुम्हारे हित के लिए किसको नष्ट करूँ ?" पिप्पलाद ने कहा, "देवता मेरे शत्रु हैं, तू जाकर उन्हें ही खा जा।"

उसी समय बड़वा के गर्भ की अग्नि प्रचंड लपटों के साथ बाहर फूट पड़ी और देवलोक की ओर चल दी। उस महाभयानक अग्नि को आते देखकर देवता भयभीत होकर निस्सहाय-से पुकारने लगे। सभी अपनी जान-बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगे, लेकिन कहीं भी बचने का उपाय नहीं दिखता था। अंत में वे महादेव की शरण में गए और उन्हीं से रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

शरणागत देवताओं पर कृपा करके भगवान् शिव ने उन्हें अभय दे दिया और वे स्वयं पिप्पलाद के पास आकर कहने लगे, "बेटा पिप्पलाद ! देवता तुम्हारी शक्ति के कारण त्राहि-त्राहि करते फिर रहे हैं। कहीं बचने का उपाय न देखकर अंत में वे मेरी शरण में आए हैं। अब तुम मेरे कहने से इन पर अधिक रोष मत दिखाओ। सोचो तो, यदि तुम इनका नाश कर दोगे तब भी तुम्हारे माता-पिता लौटकर नहीं आएँगे और फिर सँभवतया तुम यह नहीं जानते कि महर्षि दधीचि ने तो स्वयं ही अपनी इच्छा से देवताओं के हित के लिए अपने प्राणों का त्याग किया है। ऐसे उपकारी और दयालु पिता के पुत्र होकर तुम्हारा इस प्रकार देवताओं पर क्रोध करना उचित

नहीं है। संसार में वे ही पुरुष धन्य हैं जो दूसरों के हित में अपने प्राण उत्सर्ग कर देते हैं। ऐसे धर्मात्मा पिता और गभस्तिनी जैसी परम गुणवती और पतिव्रता देवी के पुत्र होकर तुम्हारे लिए इस प्रकार क्रोध करना उचित नहीं है। "बेटा ! सोचो तो, तुम्हारे पिता कैसे शक्तिशाली थे जिनकी अस्थियों से देवता सदा दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करते हैं। फिर तुम्हारा भी प्रताप कम नहीं है। इसी से आज देवता स्वर्ग से भ्रष्ट होकर निस्सहाय-से मेरी शरण में आए हैं। आर्त प्राणियों की रक्षा से बढ़कर दूसरा कोई पुण्य नहीं है। क्रोध छोड़कर देवताओं की रक्षा करो। इससे पिता की भाँति तुम्हारी भी दयालुता का पारा चारों दिशाओं में फैल जाएगा।"

भगवान् शंकर इस तरह पिप्पलाद को समझाने लगे। पिप्पलाद ने महादेव के चरणों में अपना सिर रखकर विनीत स्वर में कहा, "हे भगवान् ! जो मन, वाणी और क्रिया द्वारा सदा मेरे हित में तत्पर रहते हैं, ऐसे दयालु स्वामी ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं देवताओं को क्षमा कर सकता हूँ देव ! लेकिन मेरी एक इच्छा है। जिन्होंने माता-पिता की भाँति मेरा पालन-पोषण किया है-उन्हीं के नाम से यह पवित्र स्थान प्रसिद्ध हो और यह पुण्य तीर्थ माना जाए। इससे मैं उनके ऋण से उऋण हो सकूँगा। यदि देवता यह स्वीकार कर लें कि पृथ्वी पर जितने भी ऐसे तीर्थ हैं, जहाँ उनकी प्रतिष्ठा होती है, उनसे अधिक माहात्म्य इस तीर्थ का होगा तो मैं अपना सारा रोष वापस ले लूँ।" भगवान् शंकर ने देवताओं से यह बात कही। देवताओं ने तुरंत यह स्वीकार कर लिया और वे सभी पिप्पलाद की दयालुता की प्रशंसा करते हुए अपने लोक को चले गए। इसके पश्चात् भगवान् शंकर ने पिप्पलाद से कहा, "बेटा, तुमने मेरी बात मानकर वही कार्य किया है जो मैं चाहता था। इसके अलावा माता-पिता के प्रति तुम्हारी अनंत भक्ति है और उन वृक्षों के प्रति भी तुम्हारे हृदय में प्रेम है, जिन्होंने तुम्हारा पालन-पोषण किया है, इन्हीं कारणों से मैं तुम्हारे ऊपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, बोलो, तुम्हारा और क्या मनोरथ है, उसे भी मैं इसी क्षण पूरा करूँगा।"

पिप्पलाद ने कहा, "हे महादेव ! मेरी यही इच्छा है कि मेरे माता-पिता और ये सभी वृक्ष सदा आपका दर्शन करें और आपके ही धाम में

जाकर निवास करें। ये देवता भी आपकी कृपा से सुखी होकर आपके ही साथ हो जाएँ।" पिप्पलाद की यह बात सुनकर देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा, "हे भद्र ! तुम धन्य हो। तुमने अपने हित की पहले चिंता न करके दूसरों के कल्याण के लिए भगवान् शंकर से वर माँगा है, इससे प्रसन्न होकर हम भी कुछ वर देना चाहते हैं।" पिप्पलाद ने कहा, "हे देवताओं ! यदि आप मेरा हित करना चाहते हैं, तो मेरी एक इच्छा पूर्ण करिए। मैं एक बार अपने स्वर्गीय माता-पिता को देखना चाहता हूँ। यदि आप उन्हें दिखा सकें तो आपकी अति कृपा होगी और मैं संसार में अपने आपको परम सौभाग्यशाली मानूँगा।"

देवताओं ने सहर्ष पिप्पलाद की बात स्वीकार कर ली और उससे कहा, "हे मुनिपुत्र ! देखो, तुम्हारे माता और पिता दिव्य विमान पर चढ़कर आ रहे हैं। विषाद छोड़कर अपने मन को शांत करो और देखो, अपने पिता महर्षि दधीचि और माता गभस्तिनी से मिलो।" देवताओं के कहते ही एक दिव्य विमान आया। महर्षि दधीचि और उनकी पत्नी उस पर बैठे हुए थे। वह विमान आकर उसी स्थान पर उतरा जहाँ पिप्पलाद खड़ा हुआ था। पिप्पलाद ने अपने माता-पिता को कभी नहीं देखा था, इसलिए वह उनको नहीं पहचान पाया और कौतूहलवश होकर उनकी ओर देखने लगा। तब स्वयं महर्षि और उनकी पत्नी ने स्नेहपूर्ण वाणी से कहा, "पुत्र, तुम्हें देखने की लालसा से हम दिव्य लोक से आए हैं। तुम हमारे बिना इस मृत्युलोक में किसी प्रकार का विषाद मत करना। सदा अपने कर्तव्य का पालन करते रहना और अपने जीवन को दूसरों के हित में ही लगाना। जो व्यक्ति केवल अपने ही स्वार्थ के लिए जीवित रहते हैं, उन अधम प्राणियों की परलोक में दुर्गति हो जाती है। परोपकारी ही सद्गति पाता है, ईश्वर तुम्हारे जीवन को सुखी रखे।"। पिप्पलाद ऋषि ने उग्र तपश्चर्या एवं ज्ञानार्जन, इसी सिद्धक्षेत्र में किया था । यहां पर पाण्डव गुफा भी हैं । गुप्तावास के दौरान पाण्डवोंने यहां कुछ काल व्यतीत किया था । परम शांत एवं रमणीय भूमि पर एक शांडिल्याश्रम – कुण्ड और स्वयंभू वटेश्वर महादेव का अति प्राचीन मंदिर भी हैं ।

श्री सरस्वती महानदी – सरस्वती प्रागट्यकी कथा वेदकालीन हैं । अति प्राचीन ऋग्वेद से पुराणकाल पर्यन्त अनेक स्थान पर इसकी संगति प्राप्त होती हैं । श्री वाकणकर प्रेरित श्री सरस्वति शोध अभियान के अन्तर्गत *श्री सरस्वती नदी पर ४००० पृष्ट का एक ग्रंथ सिद्धपुर के विद्वान पंडित श्री प्रेमवल्लभ शर्माने लिखा था और श्री वाकणकरजी की प्रकाशन करनेकी इच्छा पर, यह हस्तप्रत उनको ई.सन् १९७९-८० में, इनके सिद्धपुर की मुलाकात समय दी थी । दुर्भाग्यवश इस ग्रंथ कहीं भी प्राप्य नहीं हैं।* श्री वाकणकरजीके पास यह ग्रंथ था जिसका प्रमाण उपलब्ध हैं । *इस ग्रंथ निर्माणके लिए स्व.पंडितजीने हिमालय से कच्छ पर्यन्त की तीन बार यात्रा की थी और पुरातत्त्वीय अवशेष – नक्शे इत्यादि भी लगाए थे । इस तपश्चर्या का फल न मिलना हमारा दुर्भाग्य हैं ।*

उपरोक्त कथनानुसार पिप्पलाद द्वारा महाविनाशक वडवानल – कृत्या उत्पन्न हुई । विश्व कल्याणार्थ उनका शमन होना आवश्यक था, यथा स्वयं वडवानल की इच्छानुसार ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती – कुरारिकाने इसे ग्रहण करके लोक हितार्थ समुद्रमें शांत किया । इस पतितपावनी सरस्वती के नाम की संगति ऋग्वेद से लेकर पुराण पर्यन्त सभी में स्तुति-सूक्तादि के रूपमें विद्यमान हैं ।

यहां वृकीतीर्थ है । पूर्वकालमें पारधि द्वारा वेधित वृकीका यहां पिप्पलवृक्ष के समीप मोक्ष हुआ था । यहां से मोक्षपिप्पल और सूर्यकुण्ड के दो स्थान समीपमें ही हैं ।

पंचकोशी यात्रा का विधान –

पंचकोशी यात्रा को तीन या पांच दिवसमें पूरी करनेका विधान हैं । इस यात्रा में पौराणिक महत्तपूर्ण सभी मंदिरो का दर्शन यथा विधि निम्नानुसार किया जाता हैं । आदौ देव-द्विज-गुरू और शास्त्रमें अपनी श्रद्धाको दृढ – स्थिर निश्चयी करके यात्राका प्रारम्भ करना चाहिए ।

विधि – *प्रातः काले, क्षौर-देहशुद्धि-प्रायश्चित्तान्ते, यथाविधि स्नात्वा सन्ध्योपासनादि नित्यकर्माणि कृत्वा, अंजलौ गंधाक्षतपुष्पान्गृहीत्वा तीर्थान् प्रार्थयेत् - ओं सिद्धेश्वरः सिद्धवटस्य साक्षात्, सिद्धाम्बिका*

सिद्धविनायकश्च । सिद्धेश क्षेत्राधिपतिश्च सिद्धः सरस्वती सिद्धकूपश्च सप्त । कपिलो कर्दमश्चैव, प्राचीमाधव संयुताः । सरस्वति वेदमाता, प्रसीदन्तु मे मंगलम् ।। एवं संप्रार्थ्य देव-द्विज-गुरू नमस्कारपूर्वक, संकल्पं कुर्यात् – अत्राद्य महा मांगल्यप्रदे............मासे..........पक्षे.........तिथौ........वासरे......... गोत्रोत्पन्नोहं..........नामा यजमानो सपत्निको – सपरिवारोहं, अशेषपापक्षय पूर्वक मम समस्त पितृणां विष्णुलोके ब्रह्मलोके च वर्षसहस्रावधि सुखपूर्वक निवासार्थे(दशपूर्वान् दशपरानात्मैकविंशति कुलोद्धारणपूर्वक श्रीश्रीस्थलदेवता प्रीति संपादनार्थं च) पंचकोशीयात्रां यथाज्ञान क्रमेण अहं करिष्ये । अवकाशानुसार(गणेशं-सरस्वतीं स्मृत्वा नत्वा च) मानसोपचारैः महागणपति पूजन – स्मरण – पंचवाक्यैः पुण्याहवाचनादि कुर्यात् । इस प्रकार संकल्पादि करके श्रद्धायुक्त हृदयसे अपने पूर्वजोंका – कुलाम्बाका स्मरण करते हुए, यात्रा प्रारंभ करें । पंचकोषी यात्रा की सूची निम्नानुसार हैं ।

श्री पिण्डतारक तीर्थ श्री नरतीर्थ श्री अश्वतीर्थ श्री ब्रह्माजी और ब्रह्माण्डेश्वर महादेव श्री वालखिल्याश्रम और वालखिल्येश्वर महादेव श्री महोदयतीर्थ श्री सहस्रकला माता श्री एकद्वार तीर्थ (श्री रहिशंकर आरा) श्री मुरलीमनोहर भगवान् श्री सिद्धेश्वर महादेव श्री सिद्धकूप (प्राचीन ज्ञानवापी) श्री मार्कण्डेयाश्रम श्री अक्षयवट श्री सिद्धचामुण्डा श्री अल्पा (अहल्या) सरोवर श्री गूहतीर्थ – गूहेश्वर महादेव और भगवान् श्रीगूह श्री परशुरामजी का दर्शन श्री बिन्दुसरोवर तीर्थ एवं मातृगया श्री गयागदाधर-कपिल का दर्शन श्री सत्यनारायण - श्री महाकाली के दर्शन श्री कर्दमाश्रम श्री महाप्रभुजीकी बैठक श्री दधिस्थली (देथली) श्री वटेश्वर महादेव श्री शाण्डिल्यकुण्ड श्री पिप्पलादाश्रम श्री पाण्डवगुफा श्री चन्द्रतीर्थ (चन्द्रासण – चान्देसर) श्री मुण्डीतीर्थ श्री संगमेश्वर श्री ऋषितडाग (ऋषि तालाब – रसूल तलाव) श्री खरेडिया हनुमान् श्री वृकीलूलतीर्थ श्री संस्कृत-वैदिक महाविद्यालय श्री गणेशतीर्थ श्री भद्रकाली मंदिर श्री वाराही मंदिर श्री हर्षदमाता श्री गणपतिपीठ (सिद्धविनायक) श्री आम्बलीवाली माता श्री गंगनाथ महादेव श्री रूद्रमहालय और श्री महाभागा पीठ श्री छबिला हनुमान् श्री गोपीनाथ मन्दिर श्री बिन्दुमाधव (श्री रणछोडजी मन्दिर) श्री राधाकृष्ण मंदिर श्री पंचमुखी हनुमान मंदिर श्री बाबाजी की वाडी श्री सरस्वती मंदिर श्री सूर्यकुण्ड (चोलापाडा) श्री लक्ष्मीजी मंदिर श्री गोविन्दमाधल मंदिर श्री गुरूदेव धूंधलीमलबाबा श्री गोवर्धननाथ मंदिर श्री

धारम्बा माता श्री सिद्धनाथ मंदिर श्री नगरेश्वर महादेव श्री ब्रह्माणीमता (जोषी की खिडकी) श्री वाराहीमाता (वहवरवाडा) श्री आशापुरी मंदिर श्री कनकेश्वरी माता श्री श्यामजी मंदिर ,श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर, श्री सिद्धेश्वरी मता, श्री खोडीयालमाता, श्री वारूणीमाता श्री नीलकण्ठेश्वर महादेव, श्री रोकडिया हनुमान्, श्री सत्यनारायण मंदिर, श्री बटुक भैरव, श्री पातालेश्वर महादेव, श्री जलियावीर, श्री गणपति मंदिर, श्री हिंगलाज मताता, श्री अम्बाजीमाता इत्यादि ।

अंतमें जब आज स्त्री जागृति और महिला विकास एवं अधिकार की बात पूरा विश्व कर रहा हैं तब यह बताना अत्यावश्यक हैं कि स्त्री अभ्युत्थान की आधारशीला सिद्धपुरमें ही हैं । देवहूति माता जो कि परमात्मा के सृष्टि निर्माणके मंगलकार्यका निमित्त बनी इतना ही नहीं भगवान से समस्त स्त्री जाति के कल्याण और मुक्ति के लिए वरदान पायी । उनकी ही पुत्री सति अनसूया जिसने जगदम्बा सीताजीको भी संस्कार दिक्षा प्रदान की थी और स्वबल से तीनों ब्रह्मा-विष्णु-महेश को बाल्यरूप में अवतरित किया था । देवहूतिकी नव कन्याए भारतवर्ष के नवखण्डो में गई थी । अर्वाचीन कालमें गं.स्व.मेनाबेन राधाकृष्ण शुक्ल एक आदर्श गुरूमाता बनकर अनेक शिष्योंको मां का स्नेह एवं साधु-संतो-विद्वानों की सेवा की । आज कोई नेता एक वृक्षारोपण करता हैं तो, सभी चैनल व न्यूजपेपरोमें शीघ्र ही प्रकाशित हो जाता हैं । यहां की गं.स्व.आनन्दीबेन मुगटराम पण्ड्या एवं कमलाबेन रामशंकर शुक्ल ने सिद्धपुर हाई-वे से लेकर देथली-वटेश्वर – पाण्डवगुफा तकके मार्गकी दोनों साईड पर आजसे ४५ वर्षपूर्व २०१६ नीम के पेड, एक व्रत के रूपमें लगाए थे, जिसकी किसीने नोंध तक नहीं ली हैं । केवल यहां के आज जो जिवीत वृद्ध हैं उनको ही यह सत्य ज्ञात हैं ।